

लैंगिकता और शिक्षा

एक बदलती हुई दुनिया में काम और विवाह

अमन मदान

इस शृंखला के पिछले लेख में यह तर्क पेश किया गया था कि लैंगिकृत भूमिकाएं केवल जैविक अन्तरों की अभिव्यक्ति न होकर काफी हद तक सामाजिक प्रक्रियाओं द्वारा निर्मित होती हैं। शैक्षिक व्यवस्था लैंगिकता के निर्माण में एक दुधारी तरीके से योगदान देती है। अक्सर यह लैंगिक भूमिकाओं की पुनर्चना में सहायता करती है, किन्तु कभी-कभी यह उन पर सवाल खड़े कर लैंगिकता की हमारी समझ का पुनर्निर्माण कर विपरीत रास्ता भी अपना सकती है।

यह लेख लैंगिक भेद के कुछ उन तरीकों की तहकीकात करता है जो आजकल समकालीन भारत और दक्षिणी एशिया में संचालित हैं। शिक्षा एक ऐसी ही जगह है जहां हरेक तरीके को अपना काम करते देखा जा सकता है और यही वह जगह भी है जहां उन्हें बदलने के संघर्ष अपनी जगह बना रहे हैं।

लैंगिकृत रोजगार और शिक्षा

भारत और दक्षिण एशियाई क्षेत्र में काफी सामाजिक विविधताएं हैं। पुरुषों और स्त्रियों को किस प्रकार क्रमशः व्यवहार करना चाहिए इसकी सामाजिक अपेक्षाओं में भी विभिन्न क्षेत्रों और सामाजिक समूहों के बीच बहुत अंतर होता है। पुरुष और स्त्रियां क्रमशः क्या कर सकती हैं कई जगहों में इस पर भी हम स्पष्ट प्रतिबंध पा सकते हैं। लेकिन अन्य जगहों पर बहुत लचीलापन भी हो सकता है। यह सब शिक्षा में लैंगिकता किस प्रकार अभिव्यक्त होती है इस पर भी असर डालता है।

किस प्रकार उस समाज का काम विभिन्न लैंगिकताओं को आवांछित किया जाता है इससे समाज में लैंगिकता महत्वपूर्ण तरीके से अभिव्यक्त होती है। यह उन सामाजिक नियमों में अभिव्यक्त होती है कि एक पुरुष और एक स्त्री के लिए क्रमशः किस प्रकार का काम उपयुक्त है। कुछ खास सामाजिक समूहों और वर्गों में स्त्रियों से केवल घर का काम अपेक्षित होता है। इसलिए इसमें आश्चर्य की बात नहीं यदि उन सामाजिक समूहों के सदस्य बालिकाओं के लिए स्कूली शिक्षा को एक व्यर्थ का विलास समझते हों। बालिकाओं को स्कूल भेजने के लिए बहुत अधिक कोशिश नहीं की जाती होगी। या वे यदि जाती भी होंगी तो उन्हें अत्यंत सस्ते और नजदीक के विकल्प में भेजा जाता होगा। पढ़ाई के अगले स्तर पर जब परिवार की ओर से अधिक प्रयास की आवश्यकता होती है तब बालिकाओं को स्कूल छोड़ देने के लिए कहा जाता है। घर पर उन्हें रसोई, सफाई, पानी लाना जैसे उन कामों में मदद करने में अपना समय लगाने के लिए कहा जाता है जिन कामों को बड़े हो जाने पर उनसे करने की उम्मीद की जाती है। होमवर्क करने या किताबें पढ़ने में समय लगाने को निरर्थक व व्यर्थ समझा जाता है। उन समाजों में भी समान नमूना देखा जा सकता है जहां स्त्रियों से घर से बाहर केवल खेती या पशु-पालन गतिविधियों में काम करने की अपेक्षा की जाती है।

कुछ अन्य सामाजिक समूहों में इसका एक विरोधाभास देखा जा सकता है। उदाहरण के तौर पर ऐसे सामाजिक समूहों के परिवार हैं जो अपने आप को एक वैश्विक बाजार के कामगार के रूप में देखते हैं और यह मानते हैं कि स्त्रियां भी वैश्विक कामगार के रूप में उतनी ही सक्षम हैं जितना कोई और। इसलिए वे अपनी बेटियों को ऐसी भूमिकाओं के लिए तैयार करने के लिए धन लगाते हैं और कोशिश करते हैं। वे उन्हें घर के काम में समय बर्बाद नहीं कर अपनी सारी ऊर्जा को स्कूल में बेहतर प्रदर्शन करने पर केन्द्रित करने की सलाह देते हैं। मजे की बात यह है कि यह बात उस वक्त तनाव का कारण बन सकती है जब ये लड़कियां बड़ी होकर किसी ऐसे व्यक्ति से शादी कर लें जिसकी संस्कृति में स्त्रियां केवल घर के कार्यों में दक्ष होती हैं। वह व्यक्ति और उसका पैतृक परिवार आश्चर्यचकित और निराश हो सकता है कि बहू खाना बनाना नहीं जानती है या वह सारा दिन किसी कार्यालय की नौकरी में कठिन परिश्रम करते हुए बिताने को महत्वपूर्ण मानती है। आजकल बहुत सारे ऐसे जोड़े और उनके परिवार नए ढंग से इस बात पर विचार करने में जुटे हैं कि पुरुषों और स्त्रियों की क्या भूमिकाएं होनी चाहिए। बहुत सारे पुरुषों और उनके परिवारों के लिए इसका मतलब इस बात पर लचीला होना है कि कौन घरेलू काम और ऐसी अन्य लैंगिकृत गतिविधियां करता है। यदि पति और पत्नी दोनों किन्हीं समकक्ष की तरह एक कार्यालय में काम करने बाहर जा रहे हैं और एक साथ समान रूप से थके वापस आ रहे हैं तो कई पुरुषों ने यह महसूस करना शुरू कर दिया है कि यह अपेक्षा करना अनुचित है कि वे घर आकर टी.वी. देख सकते हैं और उनकी पत्नियां उनके लिए एक कप चाय बनाएंगी और रात का खाना बनाना शुरू कर देंगी।

कौन क्या काम करता है इसे लेकर बदल रही संस्कृति ने विद्यालयी पाठ्यचर्या, शिक्षण सामग्रियों और कक्षा में होने वाले व्यवहारों पर भी अब सवाल खड़े किए हैं। जो विद्यालयी पाठ्यचर्या गृह विज्ञान के पाठ्यक्रमों को केवल बालिका विद्यार्थियों के अनुकूल देखती रही है उनके सामने सवाल उठाए जा रहे हैं कि क्या इन्हें लड़कों को भी नहीं पढ़ाया जाना चाहिए। यदि हमारे समय के युवाओं के लिए किसी नई जगह पर जाकर नौकरी करने की बहुत संभावना है और वे किसी ऐसी नई जगह पर जाकर एक नौकरी पाएंगे, जहां परिवार साथ नहीं होगा, तब उन्हें अवश्य अपना भोजन बनाने के लिए खाना बनाना जानने की आवश्यकता होगी। इसका मतलब है कि उन्हें भी एक ऐसी स्कूली शिक्षा की आवश्यकता है जो उन्हें पाक कला की मूलभूत बातों और कौनसा आहार पोषक है और कौनसा नहीं के बारे में पढ़ाए। बदलाव का एक लक्षण यह है कि पाठ्यपुस्तकें और पठन-सामग्री तैयार करने वालों से यह पूछा जा रहा है कि अध्यायों और चित्रांकनों में केवल पुरुष ही सक्रिय लोगों की तरह क्यों दिखलाए जाते हैं। व्यावसायिक भूमिकाओं में लैंगिक निष्पक्षता को प्रोत्साहित करने के लिए कारखाने के कामगारों और प्रबंधकों के रूप में चित्रों में शायद उतनी ही संख्या में स्त्रियों को दिखलाना बेहतर होगा जितनी संख्या में पुरुषों को दिखाया जाए।

भारत के कई (सभी नहीं) भागों में पुरुषों और स्त्रियों के बीच कार्य भूमिकाओं का एक सामान्य ध्रुवीकरण यह है कि स्त्रियां बच्चे और परिवार का खयाल रखती हैं और परिवार और घरेलू परिवेश से बाहर की दुनिया से संबंधित मामलों को पुरुष संभालते हैं। स्त्रियों को 'स्वाभाविक' रूप से दूसरों का ध्यान रखने की ओर प्रवृत्त कहा जाता है। लेकिन अब यह बात उभर रही है कि पुरुष भी किसी अन्य की तरह ध्यान रखने वाले हो सकते हैं। ये सब "पौरुष" या पुरुष होने का मतलब क्या होता है को लेकर सामाजिक रूप से रचित संस्कृतियां हैं। पौरुष की एक प्रकार की व्याख्या यह भी हो सकती है कि पुरुष का आक्रामक और निष्ठुर होना अपेक्षित है। नारी सुलभ ध्यान बनाम पुरुषों की कठोरता की यह संस्कृति परिवार में, मीडिया के जरिए और स्कूल में सीखी जाती है। दूसरी आम चीज हम स्कूलों में यह देखते हैं कि शिक्षक लड़कियों को खाद्य संबंधी गतिविधियों को संभालने के लिए कहते हैं जबकि किसी को एक बल्ब बदलने के लिए तिपाई पर चढ़ना हो तो इसे करने के लिए किसी लड़के को बुलाया जाता है। ऐसे काम लैंगिक रूढ़ियों को और पुष्ट करते हैं। हर बार देवी सरस्वती की पूजा के बाद तिलक लगाने के लिए किसी लड़की को कहा जाता है, इससे सभी देखने वालों के मन में यह विचार पुष्ट होता जाता है कि यह काम पुरुषों का नहीं, स्त्रियों का है। सांस्कृतिक रूप से पढ़ाया गया यह संदेश अंतर्मन में बस जाता है और लड़कों और लड़कियों की पहचान का

हिस्सा बन जाता है। जब मध्यम वर्ग के बच्चों से यह पूछा जाता है कि वे कौनसा पेशा अपना पसंद करेंगे, तब लड़कियों को यह कहते सुना जाता है कि वे सेवा सुषुश्रा की दात्री चिकित्सक बनना चाहेंगी जबकि लड़के कहते हैं कि वे कठिन भौतिक विज्ञान के खोजी वैज्ञानिक और इंजीनियर बनना चाहेंगे। जिन सामाजिक वर्गों में, सूचना प्रौद्योगिकी/आईटी को पुरुषों और स्त्रियों दोनों के लिए एक साध्य विकल्प के रूप में देखा जाता है, वहां यह उत्साह वर्धक लगता है कि पुरुष और स्त्री दोनों कहते हैं कि वे कम्प्यूटर इंजीनियर बनना चाहते हैं। यह देखना दिलचस्प है कि एक उत्कृष्ट वातानुकूलित कार्यालय में एक कम्प्यूटर स्क्रीन के सामने बैठना लैंगिक दृष्टि से अपेक्षाकृत तटस्थ काम है जबकि एक हेलमेट पहनकर निर्माणाधीन इमारत का निरीक्षण करना एकदम 'मर्दाना' किस्म का काम है।

दुनिया में और भारत के कई भागों में काम के संदर्भ में पुराने लैंगिक पैटर्नों में हलचल मची है और उन्हें बदला जा रहा है। शिक्षा व्यवस्था से भी सवाल किए जा रहे हैं कि वह इस मामले में क्या पक्ष ले रही है।

विवाह, यौनिकता और शिक्षा

यह व्यापक रूप से मान्य है कि स्त्री और पुरुष की एक-दूसरे से शादी होनी है। इसके साथ-साथ यह विचार भी है कि वे एक-दूसरे को यौनिक रूप से वांछनीय पाते हों। दरअसल इसमें विभिन्न समाजों में बहुत सारी भिन्नताएं हैं। एक व्यक्ति शादी के लिए कैसे तैयार होता है और और वांछनीयता पैदा करने के लिए वह व्यक्ति या उसका परिवार क्या करता है इसमें विभिन्न प्रकार के समाजों में बहुत अधिक अंतर हो सकता है।

भारत में प्रेम विवाह लोकप्रियता हासिल कर रहे हैं और हालांकि जो "प्रेम में" हैं वे यह विश्वास कर सकते हैं कि यह महसूसियत एक सार्वभौमिक भावना है, दरअसल प्रेम विवाह कुछ समाजों में बहुत आम हैं, जबकि अन्य में नहीं। यहां तक कि अमेरिका जैसे देशों में यह केवल 19वीं शताब्दी के अंत के बाद मानदंड बना। समय के साथ धीमी गति से परिवर्तित होने वाले समाजों में, व्यक्तिगत पसंद का बहुत अधिक महत्व नहीं होता। लोग अपने परिवार के साथ बहुत घनिष्ठ रूप से जुड़े होते हैं और कोई भी विवाह व्यक्तियों नहीं बल्कि परिवारों के बीच बनने वाले सम्बन्ध का हिस्सा होता है। हालांकि, उन समाजों में जहां व्यक्ति अपने शेष परिवार से बहुत अलग भूमिकाओं और जीवन शैली में प्रवेश कर रहा होता है, व्यक्ति और अभिभावक की पीढ़ी की संस्कृतियों के बीच का तनाव उभरने लगता है। व्यक्ति महसूस करने लग सकता है कि पुरानी पीढ़ी की पसंदों और जीवन शैली के साथ अब तालमेल बैठाना मुश्किल है। ऐसी परिस्थितियों में, प्रेम या मित्रता पर आधारित विवाह का विचार लोकप्रियता प्राप्त कर लेता है। ऐसे में विवाह या यौनिक साथी की पसंद अधिकतर निजी अनुकूलता पर निर्भर करने लगती है न कि केवल परिवारों की अनुकूलता पर। इस सांस्कृतिक स्थानान्तरण को लोकप्रिय संस्कृति, फिल्में, टी वी सीरियल, किताबें अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं। चाहे यह 1973 की फिल्म बॉबी हो जहां अभिभावकों का सामाजिक वर्ग एक युवक और एक युवती के प्रेम के बीच रुकावट बनता है या 1995 की दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे जहां एक जोड़े को साथ रहने के लिए उनके परिवारों के सांस्कृतिक बोध व पहचान के साथ समझौता करना है, अन्तर्निहित संदेश परिवार और समुदाय की पसंद और प्राथमिकता की अपेक्षा व्यक्तिगत पसंद और प्राथमिकता का है। इन फिल्मों की लोकप्रियता समाज में हो रहे परिवर्तन का प्रमाण देती है।

समाज और विवाह संस्था के स्वरूप में बदलाव के साथ-साथ विभिन्न लैंगिकताओं से की जाने वाली अपेक्षाओं में और शिक्षा द्वारा लोगों की भूमिकाओं में किए जाने वाले योगदान में भी बदलाव आता है। कई सामाजिक समूहों में वयस्क होने के पश्चात स्त्री से अपेक्षा की जाती है कि विवाह कर ले ताकि वह एक पत्नी और एक मां होने की भूमिका मुख्य रूप से अदा कर सके। शिक्षा से ऐसा व्यक्ति का निर्माण करने में सहायता करने की उम्मीद की जाती है। इसलिए छोटी लड़कियों से शिशुओं को पसंद करने और उनके साथ खेलने जैसे व्यवहार सीखने की उम्मीद की जाती है जबकि लड़कों से मदद करने या कभी-कभार शिशुओं को गोद में लेने की भी उम्मीद नहीं की जाती है। लड़कियों से उनके

ऐसा ना चाहते हुए भी कर्तव्यनिष्ठ, आज्ञाकारिणी और विनम्र होने की उम्मीद की जाती है। हालांकि जब पेशे बदल जाते हैं और स्त्रियां घर से बाहर काम करने लग जाती हैं तब बहुत सारी पुरानी सामाजिक उम्मीदों को बनाए रखना मुश्किल हो जाता है। विचार भी बदलते हैं और ज्यादा से ज्यादा पुरुष यह जानने लगते हैं कि उनकी पात्रता केवल दूर रहने और आक्रामक होने में नहीं है। जब एक स्त्री अपने को एक पुरुष के समान काम करते देखती है, तब शायद संवेदनशील और खयाल रखने वाला पुरुष होना भी उन गुणों में शामिल हो जाता जिनसे पुरुष की आकर्षकता बढ़ती है। अब कुछ सामाजिक वर्गों में विवाह के लिए स्त्री और पुरुष की डिग्रियां और नौकरियां देखी जाती हैं। ऐसा केवल तय करके की जाने वाली शादियों में नहीं होता बल्कि व्यक्तिपरक “प्रेम” विवाहों में भी होता है। कुछ सामाजिक वर्गों में एम.बी.ए. होना एक व्यक्ति की कमनीयता को बढ़ाता है, तो कुछ अन्य सामाजिक वर्गों में, जे.एन.यू. से एम.ए. होना उनकी वांछनीयता में वृद्धि करता है।

शैक्षिक पाठ्यचर्या और शिक्षाशास्त्र को अब इस सवाल से जुड़ना है कि उनकी इच्छा किस प्रकार के पौरुष या नारीत्व को बढ़ावा देने की है। जहां कुछ शिक्षाशास्त्री पुरानी भूमिकाओं से संतुष्ट हैं, तो कई दूसरे ऐसा वातावरण तैयार करने का प्रयास कर रहे हैं जो पुरुषों और स्त्रियों के एक-दूसरे के बारे में सोचने के तरीके को बदले। इसका एक उदाहरण केवल लड़कों या केवल लड़कियों वाले स्कूलों की तुलना में सह-शिक्षा स्कूलों के विरोधाभास में देखा जा सकता है। एकल लैंगिकता वाले स्कूलों में अन्य लैंगिकता खतरनाक है और उसे दूर रखना है। यहां तक कि स्कूल में दाखिल होते हुए समान वय समूह वाली लैंगिकता को देख लेना भी हृदय की धड़कनों को तेज कर देने के लिए काफी है। दूसरी ओर सह-शिक्षा स्कूल अन्य लैंगिकता के असम्बद्ध व्यक्तियों की उपस्थिति का अभ्यस्त होने में विद्यार्थियों की सहायता करते हैं। किसी लड़की की बगल में बैठे हुए लड़के को इस हेलमेल और दिनचर्या से यह सीखने को मिलता है कि वह मूलतः एक सह-विद्यार्थी है न कि एक लड़की। कुछ विद्यालयों एवं महाविद्यालयों के पास विशेष कार्यशालाएं और पाठ्यक्रम हैं जहां लैंगिकता पर विमर्श किया जाता है और विद्यार्थियों को आम धारणाओं को चुनौती देने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। यह आश्चर्यजनक नहीं है कि ऐसे प्रश्न उन लोगों को परेशान कर सकते हैं जो विशेष प्रकार के लैंगिक विश्वासों और व्यवहारों पर टिके रहते हैं। अखबारों के वैवाहिक विज्ञापनों में भी यह कहते देखा गया है कि विशेषकर इन महाविद्यालयों के विद्यार्थियों को आवेदन देने की आवश्यकता नहीं है!

चूंकि शिक्षा के माध्यम से अधिक से अधिक स्त्रियां आर्थिक रूप से स्वतंत्र होती हैं और यह विचार कि विवाह केवल एक घनिष्ठ निजी बंधन का विषय है, शक्ति प्राप्त करता है, विवाह के संबंध में विचार भी बदल रहे हैं। स्त्री और पुरुष दोनों पूछ रहे हैं कि चूंकि वे उस सही व्यक्ति को, जिसके साथ वे एक विशेष निजी बंधन स्थापित करने में समर्थ हों, ढूंढने में असमर्थ हैं तो अविवाहित रह जाने में क्या बुरा है। स्त्रियों के लिए इस प्रश्न में एक अतिरिक्त आयाम है क्योंकि उनके लिए विवाह का मतलब हो सकता है, एक ऐसे परिवार के पास जाना और रहना जो लैंगिक भूमिकाओं को एक अधिक परम्परागत तरीके से देखता हो। इससे काफी असुविधा और संघर्ष पैदा हो सकता है।

इस बदलते हुए समय में दूसरी महत्वपूर्ण बात पुरुष समलैंगिक और स्त्री समलैंगिक जोड़ों को और अधिक सामाजिक स्वीकृति मिलना हुई है। एक ही लैंगिकता के लोगों में स्नेह और बंधन प्राचीन काल से विदित है। यह यौनिक चरित्र भी अख्तियार कर सकता है यह भी सारे समाजों को भली-भांति ज्ञात है। समकालीन समय में व्यक्तिगत प्राथमिकताओं को सर्वाधिक स्वीकृति है। स्त्रियों के लिए यह संबंध बनाने का और एक ऐसा साथी पाने का एक रास्ता भी देता है, जो उनसे परम्परागत भूमिकाएं निभाने की उम्मीद ना पाले हो तथा जो समझता हो कि पुरुषोचित व्यवहार का मतलब हावी होना और असंवेदनशील होना नहीं होता है। हालांकि ऐसे लोग अभी भी अल्पसंख्यक ही हैं। स्कूलों और शिक्षा संस्थाओं को अपने आप से पूछना होगा कि वे इससे कैसे निबटेंगे। इसे नजरअंदाज करने का मतलब है कि विपरीत लिंगी विवाह को ही एकमात्र संभव विकल्प मानना और इस वजह से दूसरों को दोषी और अपमानित महसूस करवाना। कुछ जगहों पर स्कूल की सामग्रियों ने कहीं-कहीं समानलिंगी जोड़े को चित्रित करना प्रारंभ किया है। समकालीन शिक्षा

व्यवस्था का ध्यान इस सामाजिक प्रवृत्ति से संबद्ध होने की ओर खींचा गया है, साथ ही साथ उससे पूछा जाने लगा है कि किस प्रकार की लैंगिक भूमिका को वह बढ़ावा देना चाहती है और क्यों?

निजी और सार्वजनिक क्षेत्र

भारत के कई भागों में व्यावसायिक ध्रुवीकरण के साथ-साथ लैंगिकता की समकालीन संस्कृति उन जगहों में भी फर्क करती है कि कहां पुरुषों का रहना उचित है और कहां स्त्रियों का रहना। यह कार्य के उस प्रकार से जुड़ा है जिसे विभिन्न प्रकार की लैंगिकताओं द्वारा सम्पादित करने के योग्य समझा जाता है। कई सामाजिक समूहों में, जैसे कि शिक्षित कर्मचारियों या खेतिहर मजदूरों में, यह अंतर बहुत स्पष्ट नहीं है और आप स्त्रियों को खेतों, कार्यालयों, इत्यादि में काम करती हुई पा सकते हैं। इसी समय, कई सामाजिक समूहों में, जैसे बहुत अधिक भूमि वाले खेतिहर परिवारों में स्त्रियों से घर और घर के आस-पास काम करने की अपेक्षा की जाती है जबकि पुरुष से दूर जाने और खेतों और बाजारों में काम करने की अपेक्षा की जाती है। वे सार्वजनिक स्थल जो मुख्य रूप से किसी परिवार या एक विशेष सामाजिक समूह के नहीं होते, फिर भी किसी सामाजिक समूह की लैंगिकृत धारणाओं और व्यवहारों को अभिव्यक्त कर सकते हैं। समकालीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था बहुत कुछ सार्वजनिक क्षेत्र जैसी है और इसलिए इसे इस पर विचार करना चाहिए कि उसे कैसा बनाया जाना है।

भारत के कई हिस्सों में यह एक आम प्रवृत्ति हो गई है कि सार्वजनिक स्थानों पर पुरुषों द्वारा स्त्रियों को यौनिक आकर्षण या उत्पिड़ित किए जा सकने वाले शिकार के तौर पर देखा जाता है। काम पर जाती महिला शिक्षिकाएं या लडकियां जिन्हें स्कूल या बाहर आना-जाना पड़ता है घर से बाहर कदम रखते ही उन्हें इस स्थिति का सामना करना पड़ता है। मगर इस व्यवहार पर शर्म की चुप्पी सधी रहती है। स्थिति और बदतर हो जाती है जब अंधेरा हो जाता है और आक्रामक पुरुष महसूस करने लगते हैं कि अब वे अपनी पहचान छिपाकर अपना काम कर सकते हैं। ऐसे विभिन्न स्थानों की तुलना बहुत दिलचस्प है। उदाहरण के तौर पर कई स्त्रियों द्वारा बतलाया गया कि मुम्बई जैसा नगर दिल्ली जैसे नगर की अपेक्षा बहुत अधिक सुरक्षित है। शायद ऐसा इसलिए है क्योंकि मुम्बई में सार्वजनिक स्थानों पर काम करने वाली स्त्रियों का एक अधिक लम्बा इतिहास है। मुंबई के आस-पास का क्षेत्र भी बहुत सारी स्त्रियों के बाहर जाने और खेतों में काम करने के लिए जाना जाता है।

किस प्रकार राजनीति की जाती है और सार्वजनिक मामलों में किस प्रकार निर्णय लिए जाते हैं इसका प्रभाव सार्वजनिक क्षेत्रों के लैंगिकरण पर पड़ता है। भारत के कई भागों में राजनीति और सार्वजनिक जीवन को पुरुषों के लिए उपयुक्त समझा जाता है स्त्रियों के लिए नहीं। वे अधिकांश महिलाएं जिन्हें हमने सार्वजनिक जीवन में देखा है जैसे जयललिता, सोनिया गांधी और इन्दिरा गांधी, उन्होंने अपने जीवन साथी या अभिभावकों के संबंधों की वजह से अपना प्रभाव हासिल किया है। उन समुदायों में राजनीति और नेतृत्व का लैंगिकरण बहुत ही कम है जहां केवल पुरुष ही नहीं बल्कि स्त्रियां भी विभिन्न गतिविधियों के लिए घर से बाहर जाती हैं। सारे विश्व में शीर्ष राजनीतिक नेताओं के रूप में क्यों स्त्रियां कभी-कभार ही देखी जाती हैं इसकी व्याख्याओं में एक है कि किस तरीके से सार्वजनिक जीवन का लैंगिकरण किया जाता है। लोग ऐसे व्यक्तियों को नेता के रूप में स्वीकार करते हैं जो सरकार में या अन्य संस्थाओं में काम करवाने में माहिर व जानकार प्रतीत होते हैं। जहां स्त्रियों का इन क्षेत्रों से बहुत अधिक पाला नहीं पड़ा होता है वहां उन्हें नेता के रूप में गंभीरता से नहीं लिया जाता और आसानी से स्वीकृत नहीं किया जाता। इसका उलट भी सच है: जब स्त्रियों का सार्वजनिक मामलों से सामना अधिक होता है तब वे भी उनके बारे में उतनी ही माहिर और जानकार हो जाती हैं जितना कि कोई और।

स्कूल एक ऐसी दिलचस्प जगह है जहां नेतृत्व और राजनीति का यह खेल खेला जाता है। यह ऐसी महत्वपूर्ण जगह भी बन गई है जहां पुराने ढर्रे पर सवाल उठाए जा सकते हैं। बहुत सारे स्कूली शिक्षक लड़कों को स्कूल संबंधी कामों

में सक्रिय होने की अनुमति देकर खुश रहते हैं। लड़कों को ही मिठाई खरीदने के लिए भेजा जाता है और फर्नीचर हटाने में सहायता करने के लिए कहा जाता है। दूसरी ओर, ऐसे स्कूल शिक्षक, जो जानबूझकर इन गतिविधियों में लड़कियों को भी शामिल करते हैं, पाते हैं कि वे भी इन चीजों को आराम से करना और उनमें निपुण होना सीख सकती हैं। छात्र परिषद् में बालिका प्रतिनिधियों का होना सुनिश्चित करना उन्हें इन मामलों से निबटना सिखाता है। यह बात दूसरे छात्रों को भी यह स्वीकार करने में मदद करती है कि स्त्रियां भी दूसरों की तरह इन सामाजिक कार्यों को कर सकती हैं। यह चीज आगे की कई और सामाजिक गतिविधियों के लिए आधार रचती है।

लैंगिकता के सिद्धांत

कई संस्कृतियों में लैंगिक भूमिकाओं को बनाए रखने के लिए अक्सर ही शारीरिक और मानसिक दोनों तरह की हिंसा का इस्तेमाल किया जाता है। स्त्रियों और पुरुषों से खास तरीकों से व्यवहार करने की अपेक्षा की जाती है और यदि वे स्वेच्छा से ऐसा नहीं करते तो उन्हें चिढ़ाकर, उनका मजाक उड़ाकर, दुर्व्यवहार कर, धमकी देकर या यहां तक कि हिंसा का इस्तेमाल कर उन्हें ऐसा करने के लिए मजबूर किया जाता है। जो स्त्रियां सार्वजनिक क्षेत्रों में जाती हैं, कई प्रकार की नकारात्मक प्रतिक्रियाओं का सामना करती हैं। परिवार के अन्दर भी लैंगिक भूमिकाओं पर सवाल खड़े करना अत्यधिक तनाव का और कभी-कभी हिंसा का कारण बन जाता है। यह और पिछला अध्याय जिसमें यह जिक्र किया गया है कि किस तरह से विभिन्न प्रकार के समाजों में लैंगिकता काम करती है यह सवाल उठाते हैं कि क्यों ये ढांचे इतने महत्वपूर्ण बने हुए हैं। लैंगिक भूमिकाओं को बनाए रखने के लिए हिंसा और विभिन्न सांस्कृतिक तरीकों का इस्तेमाल हमें बतलाता है कि इन ढांचों की व्याख्या करने के लिए जैविकी पर्याप्त नहीं है। यदि जैविकी पर्याप्त होती तो स्त्रियों और पुरुषों को उनके अपने-अपने स्थानों पर बने रहने के लिए हिंसा या व्यापक सांस्कृतिक व्यवहारों की कोई जरूरत नहीं होती। सामाजिक जीवन लैंगिक भूमिकाओं की रचना क्यों करता है इस बात की व्याख्या करने के लिए कई सिद्धांत प्रस्तुत किए गए हैं। शिक्षाशास्त्रियों के लिए इन सिद्धांतों को समझना और इनकी तुलना करना महत्वपूर्ण है क्योंकि वे ही इस बारे में हमारा मार्ग दर्शन कर सकते हैं कि शैक्षिक संस्थानों में लैंगिकता से कैसे निबटा जाए और इसके लिए कैसी शैक्षिक रणनीति विकसित की जाए।

कार्यात्मक दृष्टिकोण : ये सिद्धांत इसमें विश्वास करते हैं कि सामाजिक व्यवहार समाज को कुछ मूल्यवान प्रदान करते हैं इसीलिए वे उभरते हैं और जारी रहते हैं। वे समाज को बचे रहने, स्थिर रहने और चलते रहने में सहायता करते हैं। इन्हें उन व्यवहारों का “कार्य” कहा जाता है। टैलकॉट पार्सन्स जैसे विद्वानों ने कहा था कि पुरुष और स्त्रियां विभिन्न सामाजिक भूमिकाएं अर्जित करते हैं क्योंकि यह समाज के लिए लाभदायक है। पुरुषों से घर से बाहर काम करने और उस कठिन, चुनौतीपूर्ण वातावरण में कैसे जिया जाता है इसे सीखने की अपेक्षा की जाती थी। इसके लिए उन्हें कठोर और असंवेदनशील बनने, विवेकपूर्ण तरीके से सोचने और अपने उद्देश्यों की खोज में एकनिष्ठ होने की आवश्यकता थी। हालांकि इसने उन्हें थका दिया और उन्हें वापस घर आने की आवश्यकता थी जो उन्हें पुनः ताजा करता। घर स्त्रियों द्वारा संचालित स्थान था और पार्सन्स के अनुसार बाहरी दुनिया की कठिनाइयों की प्रतिपूर्ति करने और संतुलित करने वाला समझा जाता था। स्त्रियों से स्नेही और ध्यान रखने में हुनरमंद होने की अपेक्षा की जाती थी। उनसे अपेक्षा की जाती थी कि वे संवेदनशील और भावुक होकर पुरुषों को पुनः अपने आप में आ जाने में सहायता करें और उन्हें बाहरी विश्व की कठोरता से एक आश्रय प्रदान करें।

इन कार्यात्मक सिद्धांतों की बहुत आलोचनाएं हुई हैं। उदाहरण के तौर पर, ऐसा क्यों है कि केवल स्त्रियों से ध्यान रखने वाली और भावपूर्ण भूमिका अपना लेने की अपेक्षा की जाती है? पुरुषों से क्यों नहीं? पुरुष भी भली-भांति उस भूमिका को निभा सकते थे। यह भी स्पष्ट नहीं है कि पुरुष और स्त्रियां दोनों क्यों नहीं घर और बाहर के कामों को बराबरी से साझा कर सकते थे। समाज में एक स्थिर संतुलन बनाए रखने और एक-दूसरे को सहारा देने का यह

भी एक तरीका हो सकता था। ऐसा प्रतीत होता है जैसे जो उनके आस-पास घट रहा है उसे उचित ठहराने के लिए कार्यात्मकतावादी बहुत अधिक व्यग्र हैं। वे यह सवाल उठाने के लिए बहुत खुले हुए नहीं लगते कि उन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए क्या और भी तरीके हो सकते थे। वे सामाजिक संबंधों की रचना में शक्ति और प्रभुता की भूमिका के संबंध में भी दृष्टिहीन प्रतीत होते हैं।

संघर्ष सिद्धांत : आजकल अधिकांश सिद्धांतकार मानते हैं कि लैंगिकता सहित वर्तमान सामाजिक व्यवहारों को अंशतः कुछ समूहों की हावी होने और उनके लिए जो भी सुविधायुक्त हो वह करने की मंशा से गढ़ा गया है। फिर इसका आशय चाहे अपने उद्देश्य को हासिल करने के लिए किसी अन्य सामाजिक समूह को कुचलना ही क्यों न हो। माना जाता है कि लैंगिक भूमिकाएं, संस्कृतियां और व्यवहार पुरुषों की हावी होने की इच्छा से उपजे हैं। चूंकि समाज में पुरुष अधिक शक्तिशाली हैं, इसके नियम, इसकी धारणाएं और इसके व्यवहार स्त्रियों को एक कमतर रूतबा सौंपते हैं और उन पर विभिन्न प्रतिबंध तय कर देते हैं। वे चाहेंगे कि शिक्षा व्यवस्था भी उनके वर्चस्व का पुनरुत्पादन करे। जैसे-जैसे यह शक्ति संतुलन बदल रहा है, शिक्षा से ये अपेक्षाएं भी बदल रही हैं।

विभिन्न प्रकार के विचार यहां दिए गए हैं। एक उग्र सुधारवादी दृष्टिकोण है जो विश्वास करता है कि लैंगिक भूमिकाओं की तह में वर्चस्व स्थापित करने की एक गहरी इच्छा है जो अपने चरित्र में विशेष रूप से पुरुषवादी है। प्राचीन काल से पुरुषों ने अपने फायदे के लिए स्त्रियों को नियंत्रित करना चाहा है। इसके विपरीत उदारवादी, मार्क्सवादी और समाजवादी विश्वास करते हैं कि हावी होने की इच्छा केवल पुरुषों तक सिमटी नहीं है बल्कि यह स्त्रियों में भी है। उदारवादी विश्वास करते हैं कि लोगों को अपने सामाजिक व्यवहारों और संस्कृतियों के परिणामों को समझने में वृहद्तर जानकारी और विवेकपूर्ण चिंतन मदद करेंगे। वे इसमें विश्वास करते हैं कि पुरुष और स्त्रियों दोनों को अपनी प्रथाओं की ध्यानपूर्वक छानबीन करने की आवश्यकता है। उनके अनुसार लैंगिक व्यवहारों को बदलने का रास्ता स्कूलों जैसी संस्थाओं के नियमों और प्रावधानों में तथा देश को संचालित करने वाले कानूनों में बदलाव के जरिए खुलता है। वे विश्वास करते हैं कि लैंगिकताओं के बीच बेहतर न्याय और समानता की कुंजी संस्थागत ढांचे में परिवर्तन है।

मार्क्सवादी विश्वास करते हैं कि केवल कानूनों और नियमों को बदल देना काफी नहीं है। लैंगिक प्रभुता या पितृसत्ता, एक सामाजिक व्यवस्था है जिसमें पुरुष समाज पर हावी रहते हैं, वास्तव में पूंजीवाद की उपज है। पूंजीवाद फैक्ट्रियों और कार्य स्थलों में पुरुषों का शोषण करने पर आश्रित है। उनके अनुसार यह तभी संभव है जब बदले में पुरुष भुगतान वाले काम पर घर से लम्बे समय तक दूर रहने में उनका साथ देने के लिए घर पर स्त्रियों पर धौंस जमाएं। पितृसत्ता पर काबू पाने के लिए पूंजीवाद को ही उखाड़ फेंकना महत्वपूर्ण है।

समाजवादी सिद्धांत विश्वास करते हैं कि भले लैंगिक भूमिकाओं के ध्रुवीकरण में पूंजीवाद योगदान कर सकता है लेकिन उनकी व्याख्या करने के लिए यह नाकाफी है। नस्ल और जाति आधारित असमानताएं भी पितृसत्ता को सशक्त करती हैं। उदाहरण के तौर पर पुरुषों और स्त्रियों से हम किस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा करते हैं यह जाति व्यवस्था से बहुत ही अच्छे ढंग से मेल खाता है। जैसा कि अम्बेडकर ने इंगित किया है, जाति सगोत्र विवाह पर निर्भर है और इसके लिए स्त्रियों को नियंत्रित करना और किससे वे विवाह कर सकती हैं और किससे नहीं इस पर नियन्त्रण रखना महत्वपूर्ण है। अपनी प्रभुता बनाए रखने के लिए किसी क्षेत्र की प्रभावशाली जाति को अपनी स्त्रियों को नियंत्रित करना अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। ये सामाजिक सिद्धांतवादी विश्वास करते हैं कि लैंगिक भूमिकाओं और वर्चस्व के पीछे सामाजिक असमानता की आपस में जुड़ी कई व्यवस्थाएं मौजूद हैं। लैंगिक भूमिकाओं को बदलने का मतलब केवल पूंजीवाद के विरुद्ध संघर्ष नहीं है बल्कि जाति-आधारित प्रभुता, क्षेत्रीय प्रभुता और प्रभुता के फायदों का आनंद उठाने की पुरुषों की इच्छा के विरुद्ध भी संघर्ष है।

शिक्षा और लैंगिकता

समाज और कक्षा-कक्ष में लैंगिकता किस प्रकार संचालित होती है, इसके अध्ययन ने शिक्षा शास्त्रियों के सामने कुछ मूलभूत प्रश्न उठाए हैं। हम किस प्रकार लैंगिक भूमिकाओं का पुनरुत्पादन करते हैं या उन्हें बदलते हैं इसे कक्षा-कक्ष के प्रतिदिन का जीवन प्रभावित करता है। इसमें इसे भी सम्मिलित किया जा सकता है कि कक्षा-कक्षों में छात्र किस प्रकार लैंगिक तरीके से बैठते हैं, शिक्षक अक्सर किनसे सवाल पूछते हैं, पोस्टरों या पाठ्य पुस्तकों में लैंगिक भूमिकाओं का चित्रण किस प्रकार का है, पाठ्यपुस्तक विभिन्न प्रकार के कार्यों के प्रति किस प्रकार का सम्मान दर्शाती है, इत्यादि।

हम स्वयं भी लैंगिक धारणाओं में इतने गहरे रूप से उलझे हुए होते हैं कि अक्सर कई ऐसी सामाजिक रूप से अनुकूलित स्थितियों से अनभिज्ञ रह जाते हैं जो केवल लैंगिक वर्चस्व का पुनरुत्पादन का मकसद पूरा कर रही होती हैं। स्कूलों और कॉलेजों में लैंगिकता कैसे संचालित होती है, एक महत्वपूर्ण पक्ष है जिसे समझने के लिए भारत के शिक्षाशास्त्रियों को अवश्य संघर्ष करना चाहिए। लैंगिकता को समझने के विभिन्न दृष्टिकोण हमें उन विभिन्न तरीकों की पड़ताल के लिए आमंत्रित करते हैं जिनके द्वारा शिक्षक, पाठ्यचर्या निर्माता और प्रशासक अधिक उचित और खुले संबंधों के विकास की कोशिश कर सकते हैं। ◆

भाषांतर : मनोज कुमार झा

लेखक परिचय: जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से एमफिल एवं पीएचडी करने के बाद एकलव्य, हौशंगाबाद के साथ लगभग 3 वर्ष तक कार्य किया। इसके उपरान्त आईआईटी, कानपुर में समाजशास्त्र का अध्यापन किया। वर्तमान में अजीम प्रेमजी यूनीवर्सिटी, बेंगलोर में समाजशास्त्र के प्रोफेसर हैं।

संपर्क : amman.madan@apu.edu.in

आगे और अध्ययन के लिए देखें:

Arya, S., Menon, N., & Lokneeta, J. (Eds.). (2013). नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे (3rd ed.). New Delhi: University of Delhi.

Chopra, R. (2005). Sisters and brothers: Schooling, family and migration. In R. Chopra & P. Jeffery (Eds.), Educational regimes in contemporary India (pp. 299-315). New Delhi: Sage.

Kumar, K. (2014). चूड़ी बाजार में लड़की. New Delhi: Rajkamal.